मार्च १९९१ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

देख देह की गंदगी

भारत की पुरातन जनभाषा का एक विपुल साहित्य लगभग तेइस सौ वर्ष पूर्व, पड़ोसी देशों में गया और वहां गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा लिखित और मौखिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रहा; यद्यपि भारत में वह सर्वथा विलुप्त हो गया। उस साहित्य में बिम्बिसार के पुत्र अभय राजकुमार के जीवनवृत के साथ-साथ अभयमाता का चरित्र भी उभरकर आता है। उसका युवावस्था का जीवन जितना गर्हित था, कृष्णपक्षीय था, आध्यात्म की उच्चतम अवस्था को प्राप्त कर वृद्धावस्था का जीवन उतना ही शुक्ल बन गया, वंदनीय बन गया और साधक-साधिकाओं के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत बन गया।

जैसे आज के युग में देश-देश में कुमारियों की सौंदर्य प्रतियोगिताएं होती हैं और सर्वश्रेष्ठ सुंदरी को सौन्दर्य साम्राज्ञी (Beauty Queen) के पद से अलंकृत किया जाता है, वैसे ही २६०० वर्ष पूर्व के भारत में भी जनपद-जनपद में ऐसी प्रतियोगिताएं होती थीं। जो युवती केवल रूप-सौंदर्य में ही नहीं, बल्कि नृत्य, वाद्य, संगीत आदि ललित कलाओं में भी सर्वश्रेष्ठ चुनी जाती थी, उसे जनपदकल्याणी की उपाधि से अलंकृत किया जाता था। उस साहीत्य में केवल एक प्रसंग ऐसा मिलता है, जिसमें कोई जनपदकल्याणी किसी राजकुमार की विवाहिता पत्नी बनने के लिए वाग्वद्ध हुई, यद्यपि विवाह उसका भी नहीं हो पाया क्योंकि राजकुमार गृहत्यागी भिक्षु बन गया। अन्यथा उन दिनों की प्रचलित सामाजिक रीति के अनुसार वह कुलवधू बनकर किसी एक परिवार विशेष की गृहशोभिनी बनने के बजाय, नगरवधू बनकर नगरशोभिनी बन जाती थी और अपनी रूपसंपदा तथा ललितकला का विक्रय-व्यवसाय कर जीवन-यापन करती थी। ऐसी एक से अधिक जनपदकल्याणियों का वर्णन पुरातन साहित्य में उपलब्ध है। पद्मावती अवन्ती जनपद की राजधानी उज्जैन नगरी की ऐसी ही एक नगर-शोभिनी थी, जिसके रूप-सौंदर्य और कला-माधुर्य की ख्याति दूर-दूर देशों तक फैल गयी थी।

उन दिनों मगध नरेश बिम्बिसार युवावस्था में से गुजर रहा था और उद्दाम कामवासना का विवश गुलाम था। पद्मावती के रूप-सौंदर्य की गुण-ख्याति सुनी तो उसे पाने के लिए अधीर हो उठा। उतनी दूर की गुप्त यात्रा करनी कठिन थी, परन्तु ऐसे कामों में एक राजपुरोहित उसका निपुण सहयोगी था, जिसकी सहायता से वह उज्जैन जा पहुँचा। बिम्बिसार ने एक रात पद्मावती के साथ बितायी, जिससे उसे गर्भ रह गया। लौटते हुए राजा बिम्बिसार ने पद्मावती को अपना परिचय दिया और कहा कि यदि गर्भ रहे और पुत्र प्राप्त हो तो शैशवकाल का लालन-पालन पूरा कर उसे राजगिरि भेज दे। राजचिन्ह के रूप में बिम्बिसार ने उसे अपनी अँगुली की राज्य-नामांकित मुद्रा दी।

दस मास पश्चात् अभय का जन्म हुआ। पद्मावती ने उसे सात वर्ष तक पालकर बिम्बिसार के आदेशानुसार राजगिरि भेज दिया, जहां कि बिम्बिसार ने अत्यंत स्नेहपूर्वक उसे राजसी सुख-सुविधाओं में पाला।

अभयमाता ने अभयपिता की इच्छा का आदर करते हुए ही नहीं, बल्कि पुत्र के उज्वल भविष्य की संभावनाओं को भी ध्यान में रखते हुए उसे राजगिरि के राजमहल में भेज दिया था। पर मां तो मां थी। अतः यह अनुमान करना समीचीन है कि वह किन्हीं साधनों से अपने पुत्र के कुशल-क्षेम और सुख-सुविधाओं की सूचनाएं मँगाती रही होगी। ऐसी सूचना उसके पास पहुँचती रही होगी कि उसका राजकुमारोचित लालन-पालन हो रहा है। अब वह कुमार अवस्था से वयस्क हो गया है। युवा हो गया है। सैन्य-संचालन विद्या सीख रहा है। राजकुमारोचित अन्य सारी विद्याओं में भी निपुण हो गया है। पिता को उसकी योग्यता पर बड़ा गर्व है। अब उसे प्रत्यंत प्रदेश में उठी एक बगावत का दमन करने के लिए भेज दिया गया है। वहां से वह विजयी और यशस्वी होकर लौटा है। महाराज ने प्रसन्न होकर सात दिन के लिए उसे शासन की बागडोर सौंप दी है। उसका लाड़ला मगध के विशाल साम्राज्य का शासक बन गया है, भले एक सप्ताह के लिए ही क्यों न हो। यह सब सुनकर उसका हृदय गद्गद हुए जा रहा है। वह हवा में उड़कर राजगिरि पहुँच जाना चाहती है और अपने पुत्र को अंक में भर लेना चाहती है। परन्तु फिर होश आता है कि लोगों को पता चलेगा कि वह गणिकापुत्र है तो उसकी प्रतिष्ठा को आंच आयेगी। अतः दूर रहकर ही उसकी मंगलकामनाएं करती है। परन्तु एकाएक यह कैसा वज्रपात हुआ? सूचना आयी कि राजकुमार अजातशत्रु ने महाराज बिम्बिसार को बंदी बना लिया और स्वयं राजगद्दी हथिया ली। कुछ दिनों के बाद महाराज की हत्या कर दी गयी। अब यह सूचना आयी कि अभय ने दाढ़ी-मूंछ और सिर के बाल मुड़ाकर गृह त्याग दिया। विरक्त होकर भगवान बुद्ध के संघ में सम्मिलित हो गया।

व्याकुल अभयमाता अब अपने पुत्र से मिलने के लिए अधीर हो उठी और लंबी यात्रा पूरी करके उज्जैन नगरी से मगध की राजधानी राजगिरि चली आयी। भिक्षु अभय ने उसे सांत्वना दी, धीरज बँधाया और धर्म की महानता समझाई। उसे भगवान की शरण में ले गया, जिससे उसमें धर्मसंवेग जागा। वह प्रव्रजित हुई और सिर मुड़ाकर भिक्षुणी संघ में सम्मिलित हो गयी। वहां उसे विपश्यना सिखाई गयी।

वह विपश्यना का अभ्यास करने लगी। परन्तु जीवन भर संचित किए हुए काम-भोग के संस्कार उसके लिए बाधक बन रहे थे। शरीर पर अनित्यबोध की संवेदना जगाकर विकारविमुक्त होना तो दूर की बात, चंद क्षणों के लिए चित्त एकाग्र करना भी असंभव हो रहा था। तब तक भिक्षु अभय अर्हंत हो चुका था। उसने अपनी जन्मदायिनी माता की प्रगति में बाधा देखी तो उससे मिला और उद्बोधन भरे शब्दों द्वारा उसमें फिर धर्मसंवेग ही नहीं जगाया, बल्कि साधना के लिए एक नया कर्मस्थान दिया, नई विधा सिखाई। वह यह जान गया था कि माता का अधिकांश जीवन अपने भौतिक शरीर को सजा-सँवारकर लोगों में कामवासना जगाने के गर्हित कार्य में ही बीता है। इस कारण शरीर के प्रति उसकी गहरी आसक्ति है। अतः अन्तर्मुखी होकर उसके प्रति संवेदनाओं के स्तर पर अनित्यबोध नहीं जगा पा रही है। उसे पहले अपने शरीर के प्रति जुगुप्सा का भाव जगाना आवश्यक है। एतदर्थ काया की अशुचि याने गंदगी के प्रति मनसिकार याने चिंतन करने का प्रारंभिक सबक सिखाया।

पुत्र-आचार्य की धर्मवाणी सुनकर माता-शिष्या अत्यंत प्रभावित हुई। जैसे सिखाया गया, वैसे चिंतन शुरू किया। सचमुच चमड़ी से ढकी इस काया के भीतर हड्डी, मांस, मज्जा, ख़ून, पीप, थूक, कफ, मल-मूत्र आदि गंदगी ही गंदगी है। इसके अतिरिक्त और है ही क्या? यों चिंतन-मनन करते-करते काया संबंधी आसक्ति टूटने लगी; भले बुद्धि के स्तर पर ही टूटने लगी। इससे अपने आप शारीरिक संवेदनाजन्य अनुभूतियों के जाग पड़ने पर अनित्यबोध जागा। धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते अनित्यधर्मा काया और चित्त के समस्त प्रपंच के प्रति उसका निर्वेद पुष्ट हुआ। राग और द्वेष के जन्म-जन्मांतरों के बंधन टूटे। विपश्यना के अभ्यास से मुक्ति के मार्ग पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ हुई भिक्षुणी अनित्य, नश्वर, भंगुर को त्यागकर नित्य, शाश्वत, ध्रुव की ओर बढ़ती गयी और शीघ्र ही स्रोतापन्न आदि पड़ावों को पार करती हुई नितांत वीतराग अर्हंत अवस्था को प्राप्त कर कृतकृत्य हुई, धन्य हुई।

भवबंधनों से सर्वथा विमुक्ति प्राप्त कर अन्य अनेक अर्हंत संतों की भांति उसके मुँह से भी हर्ष के उद्गार निकले। सर्वप्रथम अपने पुत्र आचार्य अभय के प्रति असीम कृतज्ञता के भाव प्रकट हुए। उससे साधना संबंधी जो आदेश मिले थे, वही बोल दोहराए –

उद्धं पादतला अम्ब! अधो वे केसमत्थका।
पच्चवेक्खस्सु'मं कायं असुचि पूतिगन्धिकं॥

हे माता, पैरों के तलवे से ऊपर और मस्तक के बालों के नीचे इस अशुचि और गंध-दुर्गन्ध से भरी काया का प्रत्यवेक्षण कर।

उद्‌बोधन के इन शब्दों को दोहराकर उसने अपने उदान के ये शब्द प्रकट किए –

एवं विहरमानाय सब्बो रागो समूहतो।
परिळाहो समुच्छिन्नो सीतिभूताम्हि निब्बुता॥

उसके आदेशों का अनुसरण कर मैंने अपना संपूर्ण राग जड़ से उखाड़ फेंका।काम-वासना की सारी जलन नष्ट कर अब मैं शीतलीभूत हूं, शांत हूं, निर्वाण प्राप्त हूं।

अभयमाता धन्य हुई। कहां रूप-सौंदर्य के कामपंक में आकंठ डूबी शरीर व्यवसायिनी और कहां भव-भव के बंधन से मुक्त वीतराग की परम अवस्था को प्राप्त अर्हंत साध्वी। सचमुच विपश्यना साधना इस बात को नहीं देखती कि किसे तारूं, किसे नहीं। जो भी विपश्यना में तपे, सो ही तरे। राजा हो या रंक ,पुरुष हो या नारी, गणिका हो या गृहणी। धर्म की गंगा कोई भेदभाव नहीं करती।•

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के चार महीने बाद ५०० बुजुर्ग संतों ने जो कि उस समय की घटनाओं के साक्षी थे, भगवान की ही नहीं, बल्कि अनेक अर्हंत संतों की वाणी भी संकलित की जो कि दो-तीन सौ वर्ष बाद अनेक पड़ोसी देशों में गयी। भारत में सर्वथा लुप्त हो जाने पर भी उन-उन देशों में अपने मौलिक रूप में सँभाल कर रखी गयी। उस तिपिटक साहित्य में अभयमाता के उपरोक्त दोनों उद्गार संग्रहीत हैं। साथ ही एक अन्य स्थान पर कुछ अन्य उद्गार भी मिलते हैं।

अर्हंत अवस्था प्राप्त कर जब अभयमाता को अनेक सिद्धियां प्राप्त हुईं तो उनमें से एक 'पुब्बेनिवासानुसति' अभिज्ञान की सिद्धि मिली। इससे वह अनेक कल्पों पूर्व तक का जाति स्मरण कर सकी। उसने देखा कि अनेक कल्पों पूर्व तिस्स नामक बुद्ध हुए थे। एक दिन वह नगर में भिक्षाटन के लिए निकले तो उसने अत्यंत श्रद्धापूर्वक एक करछुल भात उनके भिक्षापात्र में डाला था। उस पुण्य कर्म का ही ऐसा कल्याणकारी फल आया कि भव-भव भ्रमण करते हुए अब उसे विपश्यना की यह अनमोल संपदा प्राप्त हुई। अपने किसी पूर्व जीवन में उसने कोई दुष्कर्म भी किया था, जिसके कारण गणिका का गर्हित जीवन जीना पड़ा। परन्तु उस दान के महान पुण्य कर्म के फलस्वरूप यह अवस्था आई कि उसे अभय जैसा पुत्र प्राप्त हुआ जो कि स्वयं अर्हंत अवस्था प्राप्त कर उसकी मुक्ति में भी सहायक हो गया। इसी सच्चाई को प्रकट करता हुआ उसका एक उद्गार उपरोक्त पुरातन साहित्य संग्रह में संकलित है।

सुदिन्नं मे दानवरं सुयिट्ठा यागसम्पदा।
कटच्छु भिक्खं दत्वान पत्ताहं अचलं पदं॥

मैंने अच्छी प्रकार श्रद्धाविनीत होकर शुभ दान दिया और इस सुयज्ञ की संपदा अर्जित की।वह जो करछुलभर भिक्षा दी, उसी पुण्य के कारण मुझे आज यह नित्य, ध्रुव, अचल अमृतपद प्राप्त हुआ।

सचमुच दुष्कर्म का दुष्फल और सत्कर्म का सत्फल देर-सबेर प्राप्त होता ही है।

अतः आओ, साधकों!दुष्कर्मों से बचें और सत्कर्मों में लगे। इसी में हमारा कल्याण निहित है।

कल्याण मित्र,
स.ना.गो.

अभया भव-भय से छुटी

इसी संदर्भ में एक और चित्र उभर कर आया है। अभयमाता की एक सहायिका, नाम अभया। लगता है उनका स्नेहसंबंध अत्यंत घनिष्ट रहा होगा, इसीलिए वह भी अभयमाता के साथ उज्जैनी से राजगिरि चली आयी और प्रव्रजित हो भगवान के भिक्षुणी संघ में सम्मिलित हो गयी।

हम नहीं जानते कि यह अभया कोई सद्गृहस्थ महिला थी अथवा अभयमाता के शरीर-व्यवसाय में साथ देनेवाली कोई गणिका। परन्तु विपश्यना साधना का अभ्यास करने के लिए उसे राजगिरि के शीतवन नामक श्मसान में जाकर शवदर्शन करने का आदेश दिया गया। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वह भी अपनी सहेली की तरह कामवासना की ग्रंथियों से पीड़ित रही होगी। उसे भी काया के प्रति आसक्ति रही होगी। संगत का असर होना स्वाभाविक है। ऐसे लोगों के लिए काया के प्रति गर्हा और निर्वेद का भाव जगाने के लिए श्मशान में मुर्दों के शरीर का निरीक्षण करना लाभप्रद होता है। शवदर्शन के आधार पर शरीर का दर्शन करने के बाद अनित्यबोधिनी विपश्यना का अभ्यास सरल हो जाता है।

श्मशान में उसने एक फूले हुए मृत शरीर को देखा तो उसके मन में गहरा संवेग जागा। इतने में उसे भगवान की कल्याणी वाणी सुन पड़ी। उसे लगा जैसे भगवान उसके सामने उपस्थित हैं और समझा रहे हैं –

अभये भिदुरो कायो, यत्थ सत्ता पुथुज्जना।

अभये, देख यह काया कितनी भंगुर है! इसमें मूढ़जन आसक्त रहते हैं।

भगवान की वाणी से उसमें धर्मबल जागा और विपश्यना में दृढ़तापूर्वक लग गयी और यह दृढ़ संकल्प किया कि –

निक्खिपिस्सामि'मं देहं सम्पजाना सतीमती।

मैं स्मृति और संप्रज्ञान के साथ कायोत्सर्ग करूंगी।

अपने अनवरत पुरुषार्थ द्वारा वह योगिनी अचिरकाल में अर्हंत अवस्था को प्राप्त हुई। मुक्ति के हर्ष में उदान वचन प्रकट हुए, जो कि उस पुरातन साहित्य में उपलब्ध है।

उसने पहले उपरोक्त गाथा गायी, तदनन्तर अपनी विजय का उद्‌घोष करते हुए कहा –

बहूहि दुक्खधम्मेही, अप्पमादरताय मे।
तण्हक्खयो अनुप्पत्तो कतं बुद्धस्स सासनं॥

बहुत दुःखों में से गुजरती हुई स्मृति संप्रजन्य द्वारा अप्रमत्त रहकर मैंने अंततः तृष्णाक्षय की निर्वाणिक अवस्था प्राप्त कर ली। इस प्रकार मैंने भगवान का शासन याने उनकी शिक्षा पूरी की।

स्थविरी अभया ने भी अन्य विमुक्त स्थविरियों की भांति पूर्व जन्मों की स्मृति-सिद्धि प्राप्त कर अपने विगत जन्म देखे और कहा कि इस भद्र कल्प के ३१ कल्पों पूर्व अरुणा नगरी में मैं अरुण नरेश की राजमहिषी थी। उस समय लोक में भगवान सिखि सम्यक्‌संबुद्ध उत्पन्न हुए थे। मैंने एक दिन सात उत्पल पुष्पों से उनकी पादवंदना की। ३१ कल्पों तक देव-मनुष्य भवों में संसरण करते रहने के पश्चात् उस पुण्यफल के प्रताप से मुझे अब इन भगवान गौतमबुद्ध से सतिपट्ठान विपश्यना मिली। बोध्यंग जगाने की साधना मिली और अपने पराक्रम पुरुषार्थ द्वारा मैंने समस्त आस्रवों का क्षय कर लिया। अब मेरा पुनर्जन्म नहीं।

नत्थिदानि पुनब्भवो।

अभया भवबंधनमुक्त हुई। कृतकृत्य हुई। नगरशोभिनी पद्मावती की संगति से भले उसने कभी गलत जीवन बिताया हो पर उसी की संगति से और अपने पूर्व पुण्य की वजह से उसे शुद्ध धर्म की मुक्तिदायिनी विपश्यना विद्या मिली, जिससे कि उसने नितांत दुःखविमुक्त अवस्था, वीतराग अवस्था प्राप्त कर ली और मानवी जीवन सफल बना लिया।

ऐसी मांगलिक सफलता सब को मिले!

मंगल मित्र,
स.ना.गो.